SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

वृद्धविमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन

गरिमा पाण्डेय, शोधार्थी, **आलोक मिश्र,** Ph. D., शोध निर्देशक, हिंदी विभाग
स्वामी शुकदेवानंद कॉलेज, शाहजहांपुर, उत्तरप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
गरिमा पाण्डेय, शोधार्थी
आलोक मिश्र, Ph. D., शोध निर्देशक
E-mail : garimapandey57@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 14/09/2024
Revised on : 15/11/2024
Accepted on : 25/11/2024
Overall Similarity : 01% on 16/11/2024

शोध सार

भारतीय साहित्य और समाज दोनों ही मूल्य आधारित हैं। जन्म देने वाले माता–पिता देव तुल्य हैं। इन माता–पिता के संस्कार स्वरूप ही व्यक्ति अपने जीवन की नींव का निर्माण करता है। हमारी उन्नति के स्वर्ण कलश की आभा का प्रमुख स्रोत यही वृद्धजन हैं। संस्कृत साहित्य में कहा गया है कि अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः, चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशो बलम्। अर्थात् वृद्धजनों की प्रतिदिन सेवा व सत्कार करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल में बढ़ोत्तरी होती है। लेकिन निज बुद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ मानने वाली आज की यह पीढ़ी इसका महत्व कहां जानती है। नई पीढ़ी तो आधुनिकता के नाम पर अपने बड़े बुजुर्गों से दूर होती जा रही है। समकालीन हिंदी उपन्यास में साहित्यकारों ने अपने अपने समय और समाज को अपने उपन्यासों की कथावस्तु का आधार बनाया है। हिंदी साहित्य में इक्कीसवीं सदी में विभिन्न विमर्शों की दस्तक हुई जिनमें स्त्री, दलित, किन्नर, बाल, विकलांग, वृद्ध तथा पर्यावरण विमर्श आदि प्रमुखता से सुनाई दे रहे हैं। इन्हीं विमर्शों में से एक वृद्धविमर्श भी है। प्रस्तुत शोध पत्र में काशीनाथ सिंह कृत 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास का अध्ययन वृद्धविमर्श के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। अपने जीवन की युवास्था से लेकर वृद्धावस्था तक जिस रघुनाथ ने अपना सारा जीवन अपने परिवार को एक सुखमय भविष्य देने के लिए खपा दिया उसी रघुनाथ के लिए रिटायर होने के बाद अपने बच्चों के जीवन में कोई स्थान नहीं है। स्वयं को आधुनिक और प्रगतिशील दिखाने की अंधी दौड़ में हमारा युवा समाज किस तरह से परंपरा से प्राप्त पारिवारिक, सामाजिक, और नैतिक मूल्यों के पतन की ओर अग्रसर है, इसकी महागाथा है 'रेहन पर रग्घू'।

मुख्य शब्द

वृद्धविमर्श, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, आधुनिकता.

भूमंडलीकरण और बाजारवाद की शक्ल में आई आधुनिकता ने पारिवारिक संबंधों को संवेदना शून्य कर दिया है। इस पर विचार करते हुए आलोचक राकेश बिहारी अपनी पुस्तक 'केंद्र में कहानी' में लिखते हैं,"लेकिन नई आर्थिक नीतियों के लागू किए जाने के बाद बाजार का चेहरा और ज्यादा घातक और आक्रामक हो गया, इतना घातक कि कौतूहल से स्पर्धा तक की यात्रा कर चुका हमारा बर्ताव अब हमें इस कदर आत्मकेंद्रित करने मे सफल हो गया है कि हम निजी हितों के कारण रिश्ते, परिवार,और समाज की उपेक्षा करने लगे। निजी हितों के संधान में पारिवारिकता और सामाजिकता की एक ऐसी उपेक्षा जिसे किसी के जीने मरने की भी परवाह नहीं।"[1] काशीनाथ सिंह कृत 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास हमें ये सोचने पर विवश कर देता है कि क्या आधुनिकता की अंधी दौड़ में शामिल होने के लिए हमारी युवा पीढ़ी को संस्कारहीन और मानवीय संवेदनाओं से शून्य होना पड़ेगा और इस दौड़ में पीछे छूट रहे, आज भी अपने परंपरागत संस्कारों से बंधे हमारे बुजुर्गों का क्या होगा?

बाजारवाद के दौर में मनुष्य ने उन संबंधों और व्यक्तियों को ही महत्व देना शुरू कर दिया जिनकी उसके जीवन में कहीं न कहीं आवश्यकता हो। मानव मूल्यों में आए इस परिवर्तन ने बुजुर्गों के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा कर दिया। जब तक वे आर्थिक अथवा शारीरिक रूप से सशक्त है तब तक वे परिवार के ढांचे में अपनी जगह रखते है। उनके अशक्त होते ही उनकी उपयोगिता पर सवाल उठने लगते हैं। जहां एक ओर नित्य उनका आशीर्वाद लेने और उनकी सेवा सत्कार करने की बात कही जाती है वहीं दूसरी ओर उनकी उपयोगिता समाप्त होते ही उन्हें बोझ की तरह परिवार के सदस्य देखने लगते हैं। भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति में सदा उपस्थित रहने के बावजूद ये बुजुर्ग अचानक से केंद्र की अपेक्षा परिधि की ओर चले जाते हैं। वृद्ध विमर्श के अर्थ पर विचार करते हुए चंद्रमौलेश्वर प्रसाद लिखते हैं ''बुढ़ापा आने का अर्थ ही है व्यक्ति का केंद्र से उखाड़ कर परिधि की ओर जाने के लिए विवश होना। केंद्र से अपदस्थ होते ही व्यक्ति समाज की उपेक्षा का पात्र बन जाता है, और यदि उसका सही पुनर्वास न हो तो उसे अपना अस्तित्व ही अभिशाप लगने लगता है। इस प्रकार परिधि पर धकेले गए एक समुदाय के रूप में वृद्ध समुदाय दुनिया का बहुत बड़ा उपेक्षित जन समुदाय है, जिसकी जनसंख्या में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तीव्रता से वृद्धि हुई है और 21वीं शताब्दी में और भी वृद्धि सुनिश्चित है, क्योंकि इधर जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही घट रही हैं तथा चिकित्सा विज्ञान ने आदमी की औसत आयु बढ़ा दी है। वृद्धावस्था विमर्श इस उपेक्षित समुदाय की दृष्टि से अथवा वृद्धावस्था को केंद्र में रखते हुए समाज, साहित्य और संस्कृति की नई व्याख्या करने वाला विमर्श है।''[2]

हमने समय–समय पर अपने बड़े लोगों को कहते सुना है कि बड़े से बड़ा सम्राट भी अपनी संतान से ही मात खाता है। रघुनाथ के साथ भी यही होता है। रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पिता के विरुद्ध जाकर अंतर्जातीय विवाह कर लेता है, जबकि उसका विवाह रघुनाथ ने अपने कॉलेज के मैनेजर की बेटी से तय किया था। संजय और सोनल की शादी के कारण रघुनाथ को अपने कार्य स्थल पर मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। थक हार कर उन्हें समय से पहले नौकरी से रिटायरमेंट लेना पड़ जाता है। बड़े बेटे की स्वार्थपरता से रघुनाथ अभी उबर भी नहीं पाए थे कि दूसरा झटका उन्हें अपनी बेटी सरला से मिलता है। भारतीय समाज में अविवाहित और उम्रदराज लड़की के पिता से निरीह शायद ही कोई प्राणी हो। बेटी के लिए एक सुयोग्य वर की तलाश करते रघुनाथ की खोज बड़े ही मार्मिक ढंग से तब खत्म हो जाती जब उन्हें सरला के किसी अनुसूचित जाति के लड़के से प्रेम संबंध होने का पता चलता है। इसकी जानकारी सरला स्वयं उन्हें देती है। वह अपने पिता को अपना विवाह उसी लड़के से करने की सलाह देती है लेकिन रघुनाथ के लिए यह बात किसी आघात से कम नहीं थी। बेटे द्वारा किए गए अंर्तजातिय विवाह ने उन्हें पहले ही अपने समाज में परित्यक्त के समान बना दिया था और बेटी का यह संबंध उनके लिए स्वीकार कर लेना असंभव था,"रघुनाथ खटिया पर फिर पसरे, इसके पहले ही शीला फफक कर रोने लगी! रघुनाथ ने आकाश की ओर दोनों हाथ उठाए–"हे भगवान! ये क्या कर रहे हो मेरे साथ! लाला तक तो गनीमत थी लेकिन अब? मैं क्या करूं? किसे मुंह दिखाऊं?....वे पागल की तरह अनाप–शनाप बक–झक करने लगे।"[3] जिस समाज और संस्कृति में बेटियों को घर की इज्जत माना जाए वहां इस तरह की घटना माता–पिता के लिए किसी वज्रपात से कम नहीं थी। बेटी की बातें उन्हें इतना क्षुब्ध कर देती हैं कि वो उसे घर

से चले जाने को कहते हैं। रघुनाथ की तीसरी संतान राजू या धनंजय ने भी बस अपने ही स्वार्थ और भविष्य के बारे में सोचा था। रघुनाथ ने जब रिटायरमेंट की सोची तो वह भड़क उठा था। उसे लगा कि पिता की तनख्वाह बंद हो जाने के बाद उसके फिजूल खर्चों को कौन उठाएगा। आगे की पढ़ाई पर होने वाले खर्चे कौन वहन करेगा। बेटे से वाद–विवाद के उपरांत रघुनाथ उसे लाखों रुपए दे देते हैं। उसके बाद धनंजय को कभी अपने माता पिता की चिंता नहीं होती।

दो बेटों और एक बेटी से भरे हुए परिवार वाले रघुनाथ अपनी वृद्धावस्था में अकेले ही रह जाते हैं। उनका बड़ा बेटा अमेरिका में, छोटे बेटे का कुछ पता नहीं और बेटी घर से दूर मिर्जापुर में। रघुनाथ और शीला उन बुजुर्ग दंपती का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन अपने बच्चों को एक सुंदर भविष्य देने में लगा दिया और स्वयं अकेले रह गए," तुम्हे जो बनना था, वह तो बन चुके, अब बच्चे हैं जिनके आगे सारी जिंदगी और दुनिया पड़ी है। वही तुम्हारे भी भविष्य हैं। जियो तो उन्हीं की जिंदगी, मरो तो उन्हीं की जिंदगी।"[4] यही औलाद समय आने पर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अपने माता–पिता को अकेले और निहत्थे छोड़ जाते हैं। यही रघुनाथ और शीला के साथ भी होता है। संजय के निर्णय ने रघुनाथ को समय से पहले ही बूढ़ा कर दिया था। मिर्जापुर से सरला जब पहाड़पुर आती है तो उसे भी लगता है कि उसके पिता अब बूढ़े हो गए हैं,"सरला ने पिता को देखा – इन्हीं चंद दिनों में कितने बदल गए पिता? गंजे हो गए हैं! सिर से बाल उखड़ गए हैं। कनपटियों को छोड़कर सामने के दो दांत जाने कब उखड़ गए! ठोकर बैठ गया है। थोड़ा और झुक गए हैं और बूढ़े की तरह चलने लगे है।"[5] वास्तव में बुढ़ापा शरीर में धीरे–धीरे प्रवेश करता है। हालांकि कि मन यह मानने को तैयार नहीं होता है कि अब हम बूढ़े हो रहे हैं। रघुनाथ को भी अपनी बढ़ती आयु और शरीर में प्रवेश करते बुढ़ापे का पता चलने लगा था," नहीं! नहीं, झूठी तसल्ली मत दो! मैं उस पगडंडी को पहचान गया हूं जिससे चल कर वह देह में घुसता है? कौन वह? बुढ़ापा। रघुनाथ बोले और फूट–फूट कर रोने लगे।"[6] यह रूदन सिर्फ रघुनाथ का नहीं बल्कि उस जैसे तमाम बूढ़े व्यक्तियों का है जिन्हें बुढ़ापे से नहीं बल्कि बुढ़ापे में होने वाली दुर्दशा का डर सताता है।

रघुनाथ का अकेलापन और निस्सहाय जीवन समकालीन समाज के हर उस बुजुर्ग का जीवन है जो संतान होते हुए भी निसंतानों की तरह जी रहा है। जिनकी संतान ने उन्हें अपने जीवन के बचे खुचे दिनों को अकेले जीने के लिए विवश कर दिया है। रघुनाथ को अकेला देख कर उनका भतीजा नरेश उनकी जमीन पर कब्जा कर लेता है। नरेश उनसे गाली गलौजी ही नहीं मारपीट भी करता है। दो बेटों के होते हुए भी रघुनाथ असहाय और अकेले होते हैं, "शीला, हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों, कभी कभी मेरे भीतर ऐसी हूक, उठती है जैसे लगता है– मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसन्तान पिता हूँ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने! हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की! न बहू देखी, न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ–बाप हैं जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौंस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्यौता नहीं दूँगी।"[7] बूढ़े माँ बाप की पीड़ा यदि उनकी औलाद ही नहीं समझ रही है तो भला और कौन समझेगा। पारिवारिक संबंधों में स्वार्थ अपने चरम पर है, जिसका जिससे जब तक स्वार्थ है उसे तब तक पूछा जा रहा है। माता पिता से भी स्वार्थपूर्ति होते ही बच्चे उन्हें अलग–थलग कर दे रहे हैं।

गाँव और घर से निकलते ही जो बच्चे सबसे पहले अपने बूढ़े माँ–बाप को भूला देते हैं, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें माँ बाप ही सबसे पहले याद आते हैं। संजय की पत्नी सोनल ने जब बनारस में नौकरी ज्वाइन की तो उसे अशोक विहार कालोनी में अकेले रहना पड़ता है क्योंकि संजय उसके साथ वापस नहीं लौटता है। कालोनी अकेले रह रहे लोगों के प्रति अपराध की घटनाएं देखने के बाद वह रघुनाथ और शीला को बनारस उसके साथ आकर रहने को कहती है। शीला तो बहु के पास रहने को तैयार थी मगर संजय के व्यवहार से क्षुब्ध रघुनाथ उसके पास जाने को तैयार नहीं थे। लेकिन गाँव में नरेश की झंझट से बचने के लिए वे बनारस चले जाते हैं। इसी अशोक विहार कालोनी में रघुनाथ का सामना अपने जैसे अन्य बुजुर्गों से होता है,जिनकी संतान ने उन्हें अकेले जीवन जीने के लिए पीछे छोड़ दिया है। अशोक विहार कालोनी जैसी तमाम कालोनियां आज हमारे समाज में खड़ी होती जा रहीं हैं जहां अकेलेपन और विवशता में अपना जीवन जीने के लिए जाने कितने बुजुर्ग अभिशप्त है, "जब कालोनी

तैयार हुई तो पाया गया कि यह बूढ़ों की कालोनी है। ऐसे बूढ़े–बूढ़ियों की जिनके बेटे बेटी अपनी बीबी और बच्चों के साथ परदेस में नौकरी कर रहे हैं– कोई कलकत्ता है, तो कोई दिल्ली, कोई मुंबई तो कोई तो कोई बंगलौर और कइयों के तो विदेश में।"[8] जो माँ बाप अपने गाँव समाज को छोड़कर इस उम्मीद में शहर आते हैं कि बच्चों को एक बेहतर भविष्य देंगे वही माँ बाप उन बच्चों के भविष्य की तस्वीर से कब बाहर हो जाते हैं उन्हें पता ही नहीं चलता है।

अशोक विहार कॉलोनी में रघुनाथ वृद्धावस्था की भयावह सच्चाई को देखत हैं। बहू से अनबन होने पर जब उनकी पत्नी बेटी के साथ रहने चली जाती है तो रघुनाथ बहू के साथ ही रुक जाते हैं। धीरे–धीरे स्वयं को शहरी दिनचर्या में ढाल भी लेते हैं। लेकिन उसी दिनचर्या में शामिल एक सुबह रघुनाथ को वृद्धावस्था की विभीषिका से भी परिचित करा देती है, "लेकिन एक सुबह – ऐसी सुबह रोज आती थी और इन्हीं आंखों से रघुनाथ देखा करते थे – उस सुबह ध्यान गया पार्क की ओर आते एक बूढ़े की ओर लकवे का मारा हुआ, मुँह टेढ़ा, गर्दन बेकाबू, बायां बाजू झूलता हुआ असहाय,घिसटता हुआ बेबस पांव, दूसरी गली से निकलता एक दूसरा बूढ़ा जिसकी एक आंख खुली और दूसरी पर हरी पट्टी, उसके पीछे एक और बूढ़ा जिसके गले में कालर यानी, स्पॉन्डिलाइटिस का पट्टा, तीसरी गली से भी एक बूढ़ा आ रहा है पार्क के गेट की तरफ धीरे–धीरे। उसके एक हाथ में बोतल है और ट्यूब लुंगी के अंदर।"[9] बुढ़ापे की ये भयावह तस्वीरें रघुनाथ को अपनी ओर खींचती मगर रघुनाथ उनसे बचकर निकलना चाहता है। वृद्ध होना एक प्राकृतिक क्रिया है परन्तु वृद्धावस्था सहज ही स्वीकार करना मनुष्य के लिए कठिन है।

शहर में रहते–रहते रघुनाथ का संबंध गाँव से खत्म होता जा रहा था। अपनी ढलती उम्र के कारण अब उनमें इतनी क्षमता नहीं रही कि अपने गाँव और जमीन का हाल–चाल लेते रहें। दोनो बेटों को अपने खेतों और जमीन में कोई रुचि नहीं थी। ऐसे में उनके मित्र जीवनाथ वर्मा उन्हें इन सब समस्याओं से परे रहते हुए स्वयं के लिए जीने की सलाह देते हैं तो यह बात उन्हें आश्चर्यचकित करती है। रघुनाथ हर उस भारतीय पिता का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसने अपना सारा जीवन अपनी संतान को उज्जवल भविष्य देने के लिए लगा दिया और अंत में बस इतनी उम्मीद रखी कि वृद्धावस्था में उनकी संतान उनका सहारा बनेगी," आखिर किस उम्मीद से रघुनाथ शीला ने मिल कर रची थी यह दुनिया? वे इतने निःस्पृह और निःस्वार्थ तो नहीं थे और उनकी उम्मीद भी उनसे अलग नहीं थी जो गाँव घर के थे। कि जब वे अशक्त हो जाएंगे तो ये बच्चे उनकी आँखें बनेंगे, उनके हाथ पांव बनेंगे। कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चे उनकी सेवा करेंगे, दवा दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती कराएंगे। कि मरने लगेंगे तो मुंह में गंगा जल, तुलसी दल डालेंगे, अर्थी सजाएंगे, श्मशान ले जाएंगे, क्रियाकर्म करेंगे। लेकिन देखो तो इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है? अरे, मरने के बाद सड़ो गलों, कौवे चील खाएं या कुत्ते क्या फर्क पड़ता है।"[10] रघुनाथ की सोच हमारी युवा पीढ़ी से की गई छोटी आशा है। जिस उम्मीद और आशा के साथ मनुष्य परिवार का सृजन करता है यह वाक्यांश बस उस उम्मीद को दिखाता है।

यदि अखबारों को उठाया जाए तो शायद ही कोई ऐसा दिन हो जब अख़बार के किसी एक पृष्ठ पर कहीं किसी वृद्ध व्यक्ति के प्रति हुई हिंसा से संबंधित ख़बर न हो। अपराधी कभी–कभी तो उस वृद्ध व्यक्ति का अपना सगा बेटा या अपने ही परिवार का कोई सदस्य होता है। उपन्यास में रघुनाथ के मित्र बापट की भी हत्या हो जाती है। उनकी हत्या करने वाला कोई और नहीं उनका गोद लिया हुआ बेटा होता है जो फ्लैट के लालच में उनका कत्ल कर देता है। यह घटना रघुनाथ को भीतर तक डरा देती है। बापट की कालोनी में रहने वाला सोनल का मित्र एक दिन उन्हें बापट के साथ घटित दुर्घटना के विषय में बताता है तो वे हतप्रभ हो जाते हैं और आह भरते हुए कहते हैं,"यह क्या होता जा रहा है लोगों को। यह कैसी होती जा रही है दुनिया। हम बहुत अच्छे नहीं थे लेकिन इतने बुरे तो नहीं थे।"[11] बापट का कत्ल हो या फ्लैट पर कब्जे के लिया राय साहब का कत्ल हो, ऐसी घटनाओं से हमारे समाचार पत्र भरे पड़े है। घर में अकेले रह गए बुजुर्ग रोज एक अनजान भय से गुजर रहे हैं। उन्हें नहीं पता कि कौन कब उन्हें किस लालच में आकर हानि पहुंचा देगा। वृद्धों के प्रति बढ़ते क्राइम रेट ने हमें हमारे परिवेश और संस्कारों पर पुनः विचार और विमर्श करने के लिए विवश कर दिया है।

अपने मित्र बापट की हत्या की सूचना और उनकी संतान की उनके प्रति उपेक्षा उन्हें मानसिक रूप से अस्थिर

कर देती है। अकेलापन उन्हें भीतर ही भीतर खाए जा रहा था। ऐसे में वे स्वयं को हानि भी पहुंचा देते हैं। लेकिन समय रहते सोनल और समीर द्वारा बचा लिए जाते हैं। उपन्यास के अंत में जमीन के कागजों पर हस्ताक्षर करवाने आए गुंडों द्वारा रघुनाथ को स्वयं को अपहृत कराना एक क्षण के लिए हमें विस्मय में डालता है। लेकिन यदि देखा जाए तो वास्तव में रघुनाथ अपने बच्चों को यह याद दिलाना चाह रहे थे कि तुम सबने भले ही मुझे अपनी स्मृति से विस्मृत कर दिया हो लेकिन मैं अपने हाड़ माँस सहित आज भी हूँ। कहीं न कहीं उन्हें यह उम्मीद है कि शायद उनके अपहरण की सूचना पाकर उनकी संतान को उनकी याद आ जाए।

निष्कर्ष

वृद्ध विमर्श के परिप्रेक्ष्य में यह उपन्यास समकालीन समाज में घटित हो रही घटनाओं के चित्रण में सफल रहता है। रघुनाथ और शीला की पीड़ा एवं अकेलापन समकालीन समाज में अपनी ही संतान द्वारा अकेले और निःसहाय छोड़ दिए गए बुजुर्गों की पीड़ा है। परंपरा और आधुनिकता का द्वंद भी उपन्यास में जगह–जगह गोचर है। बदलती आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था ने किस प्रकार वृद्ध जीवन की दुर्दशा को बढ़ाने का कार्य किया है यह भी इस उपन्यास में दिखाई देता है। सोनल और उसके ससुर रघुनाथ का सरल और सहज संबंध यह सिद्ध करता है कि यदि बुजुर्ग पीढ़ी अपनी सोच और रूढ़िगत परंपरा में थोड़ा ढीलापन लाए और नई पीढ़ी थोड़े संयम और प्रेम के साथ अपने बुजुर्गों को समझे तो निश्चय ही सास–ससुर और बहु एक सुखी सहजीवन व्यतीत कर सकते हैं। समकालीन समाज में रघुनाथ जैसे जाने कितने रिटायर्ड टीचर, प्रोफेसर,डॉक्टर,क्लर्क और अन्य सरकारी कर्मचारी आदि अपना जीवन शहर में अकेले जीने को विवश हैं। इतना अकेलापन और त्रासद जीवन है कि यदि मृत्यु हो जाए तो बेटा अंतिम संस्कार का व्यय ऑनलाइन भिजवा दे रहा है, किंतु स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ है।

सन्दर्भ सूची

1. बिहारी राकेश (2013) *केंद्र में कहानी*, पुस्तकनामा प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 18।
2. प्रसाद चंद्रमौलेश्वर (2016) *वृद्धावस्था विमर्श*, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, पृ. 10।
3. सिंह काशीनाथ (2008) *रेहन पर रग्घू*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 52।
4. वही पृ. 18।
5. वही पृ. 50।
6. वही पृ. 56।
7. वही पृ. 89।
8. वही पृ. 104।
9. वही पृ. 125।
10. वही पृ. 149।
11. वही पृ. 153।

****